वेदोऽखिलोधर्ममूलम्

ऋग्वेद
यजुर्वेद
सामवेद
अथर्ववेद

वेद प्रकाश

मासिक पत्र (6-7) प्रतिमाह) मूल्य:५ (३०/-वार्षिक)रुपये सितम्बर २०१५

कुल पृष्ठ संख्या २०, वजन: 40 ग्राम

प्रकाशन तिथि: 4 सितम्बर 2015

अन्त:पथ

'आओ, ईश्वर-ईश्वर खेलें' *-मनमोहन कुमार आर्य*	३ से ७
पं. लेखराम एवं वीर सावरकर के जीवन विषयक सत्य घटनाओं का प्रकाश *-मनमोहन कुमार आर्य*	७ से १२
यह रथ प्रभु प्राप्ति के लिए है *-महात्मा चैतन्यमुनि*	१२ से १५
अश्वों को ढंग से जोड़ो *-महात्मा चैतन्यमुनि*	१५ से १८

ईर्ष्या या घृणा के विचार मन में प्रवेश होते ही खुशी गायब हो जाती है।

प्रेम व शुभ भावनायुक्त विचारों से उदासी दूर हो जाती है।

शुद्ध ज्ञान, कर्म व उपासना का संक्षिप्त परिचय

–डॉ. मुमुक्षु आर्य

शुद्ध ज्ञानः–

1. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम और सर्वाधार है उसी की उपासना करनी चाहिए।
2. आत्माएं अजर, अमर, अल्पज, अल्पशक्तिमान और शुभ, अशुभ, मिश्रित व निष्काम कर्मों के आधार पर जन्म–मरण के बन्धन में आने वाली अथवा मोक्ष पद को प्राप्त करने वाली हैं।
3. प्रकृति जड़ है, सत्व, रज, तम तीन प्रकार के गुणों वाली और सृष्टि उत्पत्ति में उपादान कारण है। प्रकृति भी आत्मा व परमात्मा की तरह अनादि और सूक्ष्म है, ईश्वर साध्य, आत्माएं साधक और प्रकृति साधन है, मुक्ति में सहायक है।

शुद्ध कर्मः–

फल की इच्छा छोड़ कर पूरी निष्ठा से अपने–अपने कर्तव्य कर्म को करना। कोई कार्य ईश्वर की, वेद की व अन्तरात्मा की आज्ञा के विरुद्ध न करना।

शुद्ध उपासनाः–

अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि यम–नियमों का सूक्ष्मता से पालन करते हुए योग के आठ अंगों का निरन्तर, श्रद्धापूर्वक व पूर्ण उत्साह से अभ्यास करना। पाषाण पूजा, पशुबलि व अवतारवाद आदि के चक्करों में न पड़ना।

स्मरण रहेः-

ईश्वर सर्वशक्तिमान का यह अर्थ नहीं कि ईश्वर कुछ भी कर सकता है। क्या वह झूठ बोल सकता है? क्या वह अन्याय कर सकता है? क्या वह स्वयं को मार कर अपने जैसा दूसरा परमात्मा बना सकता है?...सर्वशक्तिमान का वास्तविक अर्थ है कि वह ईश्वर सृष्टि उत्पत्ति, प्रलय करने व कर्म फल प्रदान करने में पूरी तरह सक्षम है–इसके लिये उसे किसी की सहायता की अथवा अवतार लेने की आवश्यकता नहीं है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेश, महादेव, इन्द्र, वरुण, यमराज, रुद्र, राहु, केतु, लक्ष्मी, सरस्वती, नारायण आदि सब नाम उसी सर्वव्यापक व निराकार परमात्मा के ही हैं। असंख्य गुणों के आधार पर ईश्वर के असंख्य नाम हैं। इन नामों से अलग–अलग भगवान्, देवी–देवता मानना व उनकी मूर्तियां बना कर पूजना नादानी है।

वेदप्रकाश

संस्थापक : **स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द**
वर्ष ६५ अंक २ वार्षिक मूल्य : तीस रुपये, एक प्रति ५ रुपये, सितम्बर, २०१५
सम्पा॰ **अजयकुमार** पूर्व सम्पादक : स्व॰ **स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती**

'आओ, ईश्वर-ईश्वर खेलें'

–मनमोहन कुमार आर्य

संसार का रचयिता ईश्वर सत्य, चेतन, आनन्दस्वरूप, संसार का स्वामी, रक्षक, पिता, सृष्टि में व्यापक, सर्वज्ञ, निराकार, सर्व शक्तिमान आदि गुणों वाला है। ईश्वर को जानने व समझने के लिए गुण व गुणी के सिद्धान्त को समझना आवश्यक है। हम जल पर विचार करते हैं। जल में आकार व रूप है। जल शीतल व प्यास बुझाने वाला है। अग्नि पर डालने से अग्नि बुझती है। अग्नि के सम्पर्क में आकर यह गर्म हो जाता है और वाष्प बनकर वायु के साथ आकाश में स्थित रहकर गति करता है तथा बादल बनकर बरसता है। यह सब गुण जल में हैं। हम यदि कहीं जल को देखते हैं तो इन गुणों के कारण ही हम उसे जल कहते हैं। यहाँ जल गुणी व द्रव्य, शीतलता आदि गुण हैं। जल जैसा आकार व रूप तो अन्य द्रव्यों में भी पाया जाता है परन्तु वह जल नहीं होते। उनके गुण जल से भिन्न होने के कारण उनको अन्य-अन्य नाम दिये गये हैं। जल में मनुष्य व पशुओं की प्यास बुझाने वाला गुण है, यह गुण जल में आँखों से दिखाई नहीं देता। यदि हमें प्यास लगी हो और हम प्यास दूर करने के लिए किसी को कहे और वह हमें जल देता है, यदि हम बिना उसे देखे, आँख बन्द कर उसे पी लेते हैं और हमारी प्यास बुझ जाती है तो उसके रस व स्वाद तथा प्यास बुझने के गुण के कारण हम यह कहेंगे कि हमने जल पिया है। इसी प्रकार जब हम सृष्टि की रचना को देखते हैं तो हम सृष्टि रचना में जो गुण पाते हैं उन्हें जानकर यदि वह अपोरुषेय है तो उसे ईश्वर के द्वारा रची व निर्मित मान लेते हैं। हमारे सामने एक पुस्तक है। इसक लेखक, मुद्रक व प्रकाशक हमारे सामने नहीं है परन्तु हम उस पुस्तक को देखकर यह बिना किसी के बताये ही मान लेते हैं कि मनुष्य रूप में इसका लेखक, मुद्रक व प्रकाशक कोई अवश्य है। इसी प्रकार से सृष्टि में उपलब्ध अन्य

अपौरुषेय पदार्थों को देखकर हमें इनके गुणी रचयिता ईश्वर का ज्ञान हो जाता है। सृष्टि रचना उसका एक गुण है। रचना जब भी होगी किसी रचयिता के द्वारा ही होगी। रचनाकार हमेशा निमित्त कारण होता है। वह बनाने वाला है, परन्तु केवल बनाने वाले से ही रचना नहीं होती, उसके लिए वह पदार्थ भी चाहिये होता है जिससे रचनाकार रचना करता है। रचना के प्रयोग में लाया गया वह पदार्थ उपादान कारण कहलाता है। किसी भी रचना का कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। पुस्तक पाठकों के लिये है। कम्प्यूटर, मेज व कुर्सी उनके उपभोक्ताओं के लिये होती है। बिना उपभोक्ता या उपयोगकर्त्ता के रचनाकार रचना में प्रवृत्त नहीं होता। इसी प्रकार से इस सृष्टि का निमित्त कारण ईश्वर है। सृष्टि की रचना उसने मूल प्रकृति जो सत्व, रज व तम गुणों वाली है, उससे की है। यह सृष्टि व उसके पदार्थों की रचना जीवों वा मनुष्य-पशु-पक्षी आदि प्राणियों के सुखोपभोग के लिये की गई है। इस विवरण से भी ईश्वर की सत्ता सिद्ध होती है। यदि ईश्वर व मूल प्रकृति न होती और यदि जीवात्मायें जो मनुष्यादि शरीरों का धारण ईश्वर के द्वारा करती हैं, न होतीं, तो यह संसार कदापि न रचा जाता अर्थात् इसका अस्तित्व न होता। **अतः जितना हमें अपने और इस सृष्टि के अस्तित्व पर विश्वास है उतना ही विश्वास हमें सृष्टि के बनाने व जीवात्माओं को मनुष्य व पशु आदि प्राणियों के रूप में जन्म देने वाले ईश्वर पर भी करना चाहिये।**

कोई भी रचना चेतन पदार्थ व सत्ता द्वारा ही होती है। जड़ पदार्थ स्वयं मिलकर कोई बुद्धियुक्त रचना नहीं करते न कर सकते हैं। इसलिये ईश्वर चेतन पदार्थ है। चेतन का एक गुण आनन्द वा सुख-दुःख आदि गुणों से युक्त होना है। मनुष्यों व अन्य प्राणियों में हम समय-समय पर सुख व दुःख दोनों को होता हुआ देखते हैं। सुख की अवस्था में मनुष्य अपनी ज्ञान व सामर्थ्य के अनुसार कामों को करता है। रोगादि दुःख की अवस्था में वह कार्य नहीं कर पाता। ईश्वर ने इस ब्रह्माण्ड को बनाया और उसका संचालन कर रहा है। यदि उसमें दुःख आता-जाता, तो वह इस रचना व इसका पालन व संचालन नहीं कर सकता था। अतः ईश्वर आनन्द स्वरूप सिद्ध होता है। इसका एक कारण यह भी है कि दुःख आत्मा को शरीर के द्वारा ही होते हैं व इसमें कुछ कारण जीवात्मा की अज्ञानता भी होती है। ईश्वर

का शरीर नहीं है, वह निराकर और सर्वव्यापक है, एवं अज्ञान शून्य वा सर्वज्ञ है, अतः शरीर न होने और अज्ञानता न होने से वह दुःखों से सर्वथा रहित है। उसकी सृष्टि आदि रचना और कार्यों को देखकर वह सर्वज्ञ सिद्ध होता है। सर्वज्ञ का अर्थ है कि जो कुछ भी जानने योग्य है, वह उसे जानता है। सर्वज्ञता का उसका यह गुण अनादि व नित्य है, इस कारण वह सदा बना रहेगा, अल्प व न्यूनाधिक नहीं होगा। इसमें सर्वज्ञता स्वतः व स्वभाव से है। इसका कोई अन्य निमित्त कारण नहीं है। जैसे मनुष्य माता-पिता व आचार्यों अथवा पुस्तकों से ज्ञान अर्जित करता है, ईश्वर के लिए ज्ञान प्राप्ति का कोई साधन नहीं है जिससे उसने यह ज्ञान लिया हो। अतः उसकी सर्वज्ञता अनादि व उसके स्वयंभू स्वरूप के कारण से उसमें है।

प्रत्येक वस्तु व पदार्थ का कोई न कोई स्वामी अवश्य होता है। इस संसार को देखने पर इसका स्वामी ईश्वर ही सिद्ध होता है। दूसरा कोई संसार का स्वामी होने का दावा करने वाला है ही नहीं। अतः वह स्वयंभू संसार का स्वामी है। मनुष्य व अन्य प्राणियों को अपनी रक्षा की चिन्ता होती है जिस पर वह ध्यान देते हैं। संसार के सभी प्राणियों की रक्षा वही ईश्वर करता है। उसके निज नाम **'ओ३म्'** का अर्थ ही रक्षा करने वाला है। यदि वह हमारी रक्षा न करता तो हम एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकते थे। मनुष्य को कुछ क्षण वायु न मिले तो मृत्यु हो जाती है। हमें वायु को प्राप्त करने के लिए कोई प्रयत्न नहीं करना होता। सारी पृथिवी के ऊपर उसने वायु का एक आवरण बनाया हुआ है। वह पूरी पृथिवी पर सर्वत्र उपलब्ध है। इसी प्रकार से जल, अग्नि व अन्नादि नाना पदार्थ भी पूरी पृथिवी पर उपलब्ध होते हैं जिनसे हमारी रक्षा होती है। अपनी रक्षा के लिये ईश्वर ने हमें बहुपयोगी दो हाथ व बुद्धि तथा शरीर में बल भी दिया है। आत्म-रक्षा के अन्य प्रकार भी हैं जिनका उपयोग कर हम स्वयं को सुरक्षित करते हैं। ईश्वर का जीवात्मा से पिता-पुत्र व आचार्य-शिष्य अथवा स्वामी-सेवक का सम्बन्ध है। ईश्वर ने हमें न केवल माता-पिता व आचार्य प्रदान किये हैं अपितु माता-पिता के हृदयों में सन्तान के जन्म देने व पालन करने की दिव्य भावनायें भी भरी हुई हैं। इसी प्रकार से आचार्यों में भी योग्य शिष्यों को अपना समस्त ज्ञान देने की भावना भी उसने भर रखी है। गुरु विरजानन्द सरस्वती व महर्षि दयानन्द सरस्वती इसका उदाहरण थे। जो ऐसा करते हैं वह सम्मानित व पूज्य होते हैं। आजकल शिक्षा व ज्ञान को

बेचा जाता है। यह अमानवीय व अदैवीय कार्य है। यह वन्दनीय नहीं अपितु अवन्दनीय है। ईश्वर से हमारा सम्बन्ध स्वामी-सेवक का है। हमें ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव व उसकी भावनाओं-अपेक्षाओं-आज्ञाओं को जानकर उसके अनुरूप गुणों को धारण व कर्तव्यों का निर्वाह करना है।

ईश्वर ने यह विशाल ब्रह्माण्ड बनाया है, अत: वह एकदेशी तो हो ही नहीं सकता। एकदेशी सत्ता से जो रचना होगी वह ससीम व एकदेशी व दोषपूर्ण ही हो सकती है, असीम, अनन्त व निर्दोष नहीं। अत: वह सर्वव्यापक व सर्वत्र विद्यमान सिद्ध होता है। आँखों से आकाशवत् दिखाई न देने के कारण वह निराकार है। सर्वव्यापक सत्ता का निराकार होना भी तर्क व युक्ति संगत है। जीवात्मा एकदेशी व असीम है। अत: ईश्वर व जीवात्मा का व्याप्त-व्यापक सम्बन्ध है। जड़वत् आकाश के साथ भी जीवात्मा का यही सम्बन्ध है। ईश्वर का एक महत्वपूर्ण गुण उसका सर्वशक्तिमान होना है। इसका प्रमाण सृष्टि की रचना और जीवात्माओं का जन्म-मृत्यु का चक्र है। ईश्वर सर्वातिसूक्ष्म जीवात्माओं के भीतर व बाहर विद्यमान होने के कारण ही उसे सर्वान्तर्यामी कहते हैं। चेतन व सर्वान्तर्यामी होने तथा हर पल जागृत अवस्था में होने से वह जीवात्मा के प्रत्येक विचार व कार्य को जानता व देखता है और अपनी कर्म-फल व्यवस्था से उसे जन्म-जन्मान्तर में उसके प्रत्येक शुभाशुभ कर्म का फल देता है। यजुर्वेद के 40/8 मन्त्र **'स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥'** में ईश्वर ने मनुष्यों को महत्त्वपूर्ण शिक्षा दी है। ईश्वर ने बताया है कि वह परमात्मा सब में व्यापक, शीघ्रकारी और अनन्त बलवान् है। वह शुद्ध, सर्वज्ञ, सब का अन्तर्यामी, सर्वोपरि विराजमान्, सनातन, स्वयंसिद्ध, परमेश्वर अपनी जीवनरूप सनातन अनादि प्रजा को अपनी सनातन विद्या से यथावत् अर्थों का बोध वेद द्वारा कराता है। वह कभी शरीर धारण व जन्म नहीं लेता, जिस में छिद्र नहीं होता, नाड़ी आदि के बन्धन में नहीं आता और कभी पापाचरण नहीं करता, जिस में क्लेश, दु:ख, अज्ञान कभी नहीं होता, इत्यादि। इस पर महर्षि दयानन्द ने टिप्पणी की है कि जो-जो गुण ईश्वर में है, उनसे ईश्वर की स्तुति करना सगुण स्तुति है। ईश्वर में जो-जो गुण नहीं है, यथा शरीर धारण न करना, जन्म न लेना, नाड़ी आदि के बन्धन में न आना, पापाचरण न करना, क्लेश,

दु:ख व अज्ञान से रहित मानकर स्तुति करना है वह निगुर्ण स्तुति कहलाती है। इस सगुण व निर्गुण स्तुति को करते हुए मनुष्यों को अपने गुण, कर्म, स्वभाव भी उसी के अनुरूप बनाने चाहियें। जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होवें। और जो केवल परमेश्वर के गुण-कीर्तन करता जाता है और अपने चरित्र को नहीं सुधारता, उसकी स्तुति करना व्यर्थ है। आजकल ऐसे लोगों की समाज में बहुतायत है। महर्षि दयानन्द द्वारा प्रस्तुत उपनिषद् वचन **"अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः श्रृणोत्यकर्णः। स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्रयं पुरुषं पुराणम्॥"** परमेश्वर के हाथ नहीं, परन्तु अपनी शक्ति रूप हाथ से सब का रचन व ग्रहण करता है। पग नहीं, परन्तु व्यापक होने से सबसे अधिक वेगवान्, चक्षु का गोलक नहीं परन्तु सब को यथावत् देखता, श्रोत्र नहीं तथापि सबकी बातें सुनता, अन्तःकरण नहीं, परन्तु सब जगत् को जानता है और उस को अवधि सहित जाननेवाला कोई भी नहीं। उसी को सनातन, सब से श्रेष्ठ सब में पूर्ण होने से पुरुष कहते हैं। सब इन्द्रियों और अन्तःकरण के बिना अपने सब काम अपने सामर्थ्य से करता है।

ईश्वर विषयक इस लेख में जो चर्चा की गई है, वह पाठकों के लिए रुचिकर एवं ज्ञानवर्धक हो सकती है। पाठक सत्यार्थप्रकाश, दर्शन, उपनिषद व वेद आदि का स्वाध्याय कर ईश्वर, जीवात्मा व सृष्टि विषयक वह सब अभिष्ट को जान सकते हैं। इन ग्रन्थों में जो निर्दोष विद्या है वह किसी मत व पन्थ के ग्रन्थ वा धर्म-पुस्तकों में नहीं है। इस ज्ञान व योग दर्शन निहित यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान समाधि आदि साधनों के अभ्यास से इस जन्म सहित परजन्म में भी लाभ होता है। यह बातें तर्क, युक्तियों व सत्य शास्त्रों के प्रमाणों से सिद्ध है।

-इतिहास प्रदूषण-

पं. लेखराम एवं वीर सावरकार के जीवन विषयक सत्य घटनाओं का प्रकाश

-मनमोहन कुमार आर्य

मनुष्य अल्पज्ञ है इसलिये उससे अज्ञानता व अनजाने में यदा-कदा भूल व त्रुटियां होती रहती है। इतिहास में भी बहुत कुछ जो लिखा होता है,

उसके लेखक सर्वज्ञ न होने से उनसे भी न चाहकर भी कुछ त्रुटियां हो ही जाती हैं। अत: इतिहास विषयक घटनाओं की भी विवेचना व छानबीन होती रहनी चाहिये अन्यथा वह कथा-कहानी ही बन जाते हैं। आर्य विद्वान प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु' आर्यसमाज के इतिहास विषयक साहित्य के अनुसंधान व तदविषयक ऊहापोह के धनी हैं। हिन्दी, अंग्रेजी व उर्दू के अच्छे जानकार हैं। लगभग 300 ग्रन्थों के लेखक, अनुवादक, सम्पादक व प्रकाशक हैं। नियमित रूप से पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखते हैं। मिथ्या आरोपों का खण्डन करते हैं। वह इतिहास विषयक एक सन्दर्भ को एक ही पुस्तक में देखकर सन्तोष नहीं करते अपितु उसे यत्र-तत्र खोजते हैं जिससे कि उस घटना की तिथियां व उसकी विषय-वस्तु में जानबूझ, अल्पज्ञता व अन्य किसी कारण से कहीं कोई त्रुटि न रहे। उनके पास प्रकाशित पुस्तकों व लेखों में जाने-अनजाने में की गई त्रुटियों की अच्छी जानकारी है जिस पर उन्होंने **'इतिहास प्रदूषण'** नाम से एक पुस्तक भी लिखी है। 160 पृष्ठीय पुस्तक का हमने आज ही अध्ययन समाप्त किया है। इस पुस्तक में रक्तसाक्षी पं. लेखराम जी के जीवन की एक घटना के प्रदूषण की ओर भी उनका ध्यान गया है जिसे उन्होंने सत्य की रक्षार्थ प्रस्तुत किया है। हम यह बात दें कि पण्डित लेखराम महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त थे। आपने लगभग 7 वर्ष तक निरन्तर देशभर में घूम कर महर्षि दयानन्द के सम्पर्क में आये प्रत्येक व्यक्ति व संगठनों से मिलकर उनके जीवन विषयक सामग्री का संग्रह किया जिसके आधार पर उनका प्रमुख व सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण जीवनचरित्र लिखा गया। 39 वर्ष की अल्प आयु में ही एक मुस्लिम युवक ने धोखे से इनके पेट में छुरा घोप कर इन्हें वैदिक धर्म का पहली पंक्ति का शहीद बना दिया था। कवि हृदय प्रो. जिज्ञासु जी ने इस शाहदात पर यह पंक्तियां लिखी हैं–**'जो देश को बचा सकें, वे हैं कहां जवानियां? जो अपने रक्त से लिखें, स्वदेश की कहानियां।।'** पं. लेखराम जी के जीवन की इस घटना को प्रस्तुत करने का हमारा उद्देश्य है कि पाठक यह जान सकें कि सच्चे विद्वानों से भी अनजाने में इतिहास विषयक कैसी-कैसी भूलें हो जाती हैं।

स्मृतिदोष की यह घटना आर्यजगत के प्रसिद्ध विद्वान जिन्हें भूमण्डल प्रचारक के नाम से जाना जाता है, उन मेहता जैमिनी से सम्बन्ध रखती है। मेहता जैमिनी जी की स्मरण शक्ति असाधारण थी। इस कारण वह चलते

फिरते इतिहास के ग्रन्थ थे। उनकी स्मरण शक्ति कितनी भी अच्छी हो परन्तु वह थे तो एक जीवात्मा ही। जीव की अल्पज्ञता के कारण उनमें भी अपवाद रूप में स्मृति दोष पाया गया है। **आपकी स्मृति दोष की एक घटना से आर्यसमाज में एक भूल इतिहास बन कर प्रचलित हो गई।** प्रा. जिज्ञासु जी बताते हैं कि यह सम्भव है कि इस भूल का मूल कुछ और हो परन्तु उनकी खोज व जांच पड़ताल यही कहती है कि यह भ्रान्ति मेहता जैमिनि जी के लेख से ही फैली। घटना तो घटी ही। यह ठीक है परन्तु श्री मेहता जी के स्मृतिदोष से इतिहास की इस सच्ची घटना के साथ कुछ भ्रामक कथन भी जुड़ गया। कवियों ने उस पर कविताएं लिख दीं। लेखकों ने लेख लिखे। वक्ताओं ने अपने ओजस्वी भाषणों में उस घटना के साथ जुड़ी भूल को उठा लिया। घटना तो अपने मूल स्वरूप में ही बेजोड़ है और जो बात मेहता जी ने स्मृतिदोष से लिख दी व कह दी उससे उस घटना का महत्व और बढ़ गया।

घटना पं. लेखराम जी के सम्बन्ध में है। इसे आर्यसमाजेतर जाति प्रेमी हिन्दू भी कुछ-कुछ जानते हैं। यह सन् 1896 की घटना है। पं. लेखराम जी सपरिवार तब जालन्धर में महात्मा मुंशीराम (बाद में स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती) जी की कोठी से थोड़ी दूरी पर रेलवे लाईन के साथ ही एक किराये के मकान में रहते थे। मेहता जैमिनि जी (तब जमनादास) भी जालंधर में ही रहते थे। मुंशीराम जी आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान थे। मेहता जैमिनि जी सभा प्रधान के पास बैठे हुए थे। पण्डित लेखराम जी प्रचार-यात्रा से लौटकर आये। **महात्मा मुंशीराम जी ने उन्हें बताया कि मुस्तफाबाद (जिला अम्बाला) में पांच हिन्दू मुसलमान होने वाले हैं। आपका प्रिय पुत्र सुखदेव रूग्ण है। आप तो उसको देखें, सम्भालें (व उपचार करायें)। मैं हकीम सन्तराम जी (जो शाहपुरा राजस्थान भी रहे) को तार देकर वहां जाने के लिए कहता हूं।**

महेता जी ने अपने इस विषयक लेख में लिखा है-**"नहीं, वहाँ तो मेरा (पं. लेखराम का) ही जाना ठीक है। मुझे अपने एक पुत्र से (आर्य-हिन्दू) जाति के पांच पुत्र अधिक प्यारे हैं। आप वहां तार दे दें। मैं सात बजे की गाड़ी से सांय को चला जाऊंगा।"** यह भी लिखा कि वह केवल दो घण्टे घर पर रुके। उनकी अनुपस्थिति में डॉ. गंगाराम जी ने बड़ा उपचार निदान किया, परन्तु सुखदेव को बचाया न जा

सका। 18 अगस्त 1896 ई. को वह चल बसा। (दृष्टव्यः 'आर्यवीर' उर्दू का शहीद अंक सन् 1953 पृष्ठ 9-10)। ईश्वर का विधि-विधान अटल है। जन्म-मृत्यु मनुष्य के हाथ में नहीं है।

जिज्ञासु जी आगे लिखते हैं कि वह तो हम समझते हैं कि **पण्डित जी के लौटने पर मेहता जी ने महात्मा जी व पण्डित जी का संवाद अवश्य सुना, परन्तु आगे का घटनाक्रम उनकी स्मृति से ओझल हो गया। पण्डित जी पुत्र की मृत्यु के समय जालंन्धर में ही थे। घर से बाहर होने की बात किसी ने नहीं लिखी। वह पुत्र के निधन के पश्चात् मुस्तफाबाद जाति रक्षा के लिए गये। अब इस सम्बन्ध में और अधिक क्या लिखा जाए?** एक छोटी सी चूक से इतिहास में भ्रम फैल गया। लोक झूम-झूम कर गाते रहे–

लड़का तिरा बीमार था।
शुद्धि को तू तैयार था।।
मरने का पहुंचा तार था।
पढ़कर के तार यूं कहा।।
लड़का मरा तो क्या हुआ।
दुनिया का है यह सिलसिला।।

इससे भी अधिक लिफाफे वाले गीत को लोकप्रियता प्राप्त हुई। अब तो वह गीत नहीं गाया जाता। उस गीत की ये प्रथम चार पंक्तियां स्मृतिदोष से इतिहास प्रदूषण का अच्छा प्रमाण है।

लिफाफा हाथ में लाकर दिया जिस वक्त माता ने।
लगे झट खोलकर पढ़ने दिया है छोड़ खाने को।।
मेरा इकलौता बेटा मरता है तो मरने दो लेकिन।
मैं जाता हूं हजारों लाल जाति के बचाने को।।

इन प्रसंग की समाप्ति पर जिज्ञासु जी कहते हैं कि स्मृतिदोष से बचने का तो एक ही उपाय है कि इतिहास लेखक घटना के प्रमाण को अन्यान्य संदर्भों से मिलाने को प्रमुखता देवें।

विद्वान लेखक प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु ने वीर सावरकर पर भी एक महत्वपूर्ण टिप्पणी की है। हम इस प्रसंग से पहली बार परिचित हुए हैं जिसे हम पाठकों के साथ साझा कर रहे हैं। पुस्तक **'इतिहास प्रदूषण'** में लेखक ने लिखा है कि **वीर सावरकर ने अपनी आत्मकथा में ऋषि दयानन्द तथा आर्य समाज से प्राप्त ऊर्जा व प्रेरणा की खुलकर चर्चा की है। यदि ये बन्धु लार्ड रिपन के सेवा निवृत्त**

होने पर काशी के ब्राह्मणों द्वारा उनकी शोभा यात्रा में बैलों का जुआ उतार कर उसे अपने कन्धों पर धरकर उनकी गाड़ी को खींचने वाला प्रेरक प्रसंग (श्री आर्यमुनि, मेरठ 'वैदिक-पथ' पत्रिका में वीर सावरकर जी पर प्रकाशित अपने लेख में) उद्ध ृत कर देते तो पाठकों को पता चला जाता कि इस विश्व प्रसिद्ध क्रान्तिकारी को देश के लिए जीने मरने के संस्कार विचार देने वालों में ऋषि दयानन्द अग्रणी रहे। इसी क्रम में दूसरी घटना है कि मगूर आर्यसमाज ने जब अस्पृश्यता निवारण के लिए एक बड़ा प्रीतिभोज आयोजित किया तो आप (यशस्वी वीर सावरकर जी) विशेष रूप से इसमें भाग लेने के लिए अपने जन्मस्थान पर पधारे। इससे यह एक ऐतिहासिक घटना बन गई। इस लेखक (प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु) ने कई बार लिखा है कि भारत के राजनेताओं में से वीर सावरकर ने सर्वाधिक आर्य हुतात्माओं तथा देशभक्तों पर हृदय उड़ेल कर लेख लिखे हैं। आर्यसमाज व ऋषि के विरोधियों को लताड़ने में वीर सावरकर सदा अग्रणी रहे। कम से कम भाई परमानन्द व स्वामी श्रद्धानन्द जी की चर्चा तो की जानी चाहिये। आपके एक प्रसिद्ध पत्र का नाम ही 'श्रद्धानन्द' था। यह पत्र भी इतिहास व साहित्य में सदा अमर रहेगा।

महर्षि दयानन्द व आर्यसमाज संगठन के प्रति समर्पित अनेक विद्वान हुए हैं परन्तु जो श्रद्धा, समर्पण, इतिहास व साहित्य के अनुसंधान की तड़प व पुरुषार्थ सहित महर्षि व समाज के प्रति दीवानगी वर्तमान समय में प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु जी में दिखाई देती है, वह अन्यतम एवं अनुकरणीय है। नाज व नखरों से रहित उनका जीवन एक सामान्य व सरल व्यक्ति जैसा है। आज की हाई-फाई जीवन शैली से वह कोसों दूर हैं। उन्होंने आर्यसमाज को जो विस्तृत खोजपूर्ण प्रामाणिक साहित्य प्रदान किया है वह स्वयं में एक कीर्तिमान है। पाठकों व हम में उनका समस्त साहित्य प्राप्त कर अध्ययन करने की क्षमता भी नहीं है। हम उनकी ऋषि भक्ति व खोजपूर्ण साहित्यिक उपलब्धियों के प्रति नतमस्तक हैं। उनके साहित्य का अध्ययन करते हुए जब-जब हमें नये खोजपूर्ण प्रसंग मिलते हैं तो हम गद्-गद् हो जाते हैं और हमारा हृदय उनके प्रति श्रद्धा-भक्ति से भर जाता है। कुछ अध ूरे प्रसंग पढ़कर व सदंर्भित पुस्तक तथा प्रमाण तक हमारी पहुंच न होने के कारण मन व्यथित भी होता है। उनके समस्त साहित्य में ऋषि भक्ति व साहित्यिक मणि-मोती बिखरे हुए हैं जो अध्येता को आत्मिक सुख देते हैं। हम ईश्वर से अपने इस श्रद्धेय विद्वान की शताधिक आयु, स्वस्थ व

क्रियात्मक जीवन की प्रार्थना करते हैं।

हम समझते हैं कि लेखकों से स्मृति दोष व अन्य अनेक कारणों से ऐतिहासिक घटनाओं के चित्रण व वर्णन में भूलें हो जाती हैं। इतिहास में विगत कई शताब्दियों से अज्ञानता व स्वार्थ के कारण धार्मिक व सांस्कृतिक साहित्य में परिवर्तन, प्रेक्षप, मिलावट व हटावट होती आ रही है जिसे रोका जाना चाहिये। प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु जी की **'इतिहास प्रदूषण'** पुस्तक इसी उद्देश्य से लिखी गई है। विद्वान लेखक ने अपनी इस पुस्तक में जाने-अनजाने में होने वाली भूलों के सुधार के लिए एक से अधिक प्रमाणों को देखकर व मिलान कर ही पुष्ट बातों को लिखने का परामर्श दिया है जो कि उचित ही है। इतिहास प्रदूषण से बचने के उनके द्वारा दिये गये सभी सुझाव यथार्थ व उपयोगी हैं।

यह रथ प्रभु प्राप्ति के लिए है

–महात्मा चैतन्यमुनि

परमपिता परमात्मा की कृपा एंव अपने पुण्यों कर्मो के आधार पर हमें यह देव-दुर्लभ मानवयोनि प्राप्त हुई है। इस मानव शरीर व शरीर के समस्त उपकरणों आदि का इतना अधिक मूल्य है कि उसे हम आंक भी नहीं सकते है। मगर साथ ही यह भी एक तथ्य है कि वास्तव में शरीर उसके लिए ही मूल्यवान् है जो इसके महत्व को समझकर इसका सदुपयोग करता हुआ आगे के लिए भी अपने कर्मो द्वारा पुण्य का संचय करता है और उससे भी अधिक योग, ध्यान व साधना आदि द्वारा जीवन के परम लक्ष्य प्रभु-प्राप्ति को उपलब्ध होता है...यदि इसके विपरीत न तो इस शरीर से पुण्य कर्म ही किए और न ही उपासनादि द्वारा प्रभु को प्राप्त किया तो भला उसके लिए यह शरीर कहां मूल्यवान रह जाता है...वह तो मानों इस न्यामत को प्राप्त करके भी कुछ प्राप्त नहीं कर पाता है...इससे भी अधिक यदि अपुण्य कमाने के लिए इसका दुरूपयोग करता है तब तो मानो उसकी दोगुनी हानि हो जाएगी...यह मानव शरीर भी बेकार गया और आगे के लिए पशु आदि योनियों में जाकर अनेक प्रकार के कष्ट भोगने पड़ेंगे। यह शरीर तो हमें अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए प्राप्त हुआ है। शरीर को हमारे शास्त्रों में एक रथ की संज्ञा दी गई है और अनेकशः प्रार्थनाएँ की गई हैं कि हमारा यह रथ स्वस्थ, सबल और सुन्दर हो तथा हम इसका सदुपयोग इस प्रकार से करें कि यह हमें हमारे लक्ष्य तक पहुँचाए। ऋग्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है–

तं युंजाथां मनसो जवीयान् त्रिबन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः।
येनोपयाथः सकुतो दुरोणं त्रिधातुना पतथो विर्न पर्णैः॥

-(ऋ.1-183-1)

(वृषणा) हे शक्तिशाली प्राणापानो! आप **(तम्)** मेरे उस रथ को **(युंजाथाम्)** ज्ञानेन्द्रियों व कर्मोन्द्रियों रूप अश्वों से युक्त करो। हमारी कर्मेन्द्रियाँ व ज्ञानेन्द्रियाँ स्वस्थ व सबल हों। **(यः)** यह रथ **(मनसः जवीयान्)** मन से भी अधिक वेगवान् है। **(त्रिबन्धुर)** यह तीन बन्धनों वाला है। तम, रज और सत् ही इसके तीन बन्धन है। यह रथ **(त्रिचकः)** तीन चक्रों वाला है। इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि ही इसके तीन चक्र हैं। यह रथ **(त्रिधातुना)** वात, पित और कफ इन तीन धातुएँ से समन्वित है। यह रथ ऐसा है कि **(येन)** इसके द्वारा **(सुकृतः)** सुकृत करते हुए हम **(दुरोणम्)** गृह को अर्थात् ब्रह्मलोक को **(उपयाथः)** समीपता से प्राप्त होते हैं...प्रभु के घर ब्रह्मलोक तक पहुँच सकते हैं। यही इस रथ का लक्ष्य भी है। वहाँ तक पहुँचने हेतु हे प्राणापानो! तुम **(पतथः)** ऐसे गति करते हो **(न)** जैसे कि **(वि)** पक्षी **(पर्णै)** अपने पंखों से अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए गति करते हैं।

अर्वाङ त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः।
त्रिबन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद् द्विपदे चतुष्पदे॥

-(ऋ.1-157-3)

इस मन्त्र में भी इस शरीर को रथ बताया गया है और यह रथ **(त्रिचक्रः)** तीन चक्रों वाला है अर्थात् इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि ये इसके तीन चक्र हैं। **(मधुवाहनः)** सब औषधियों के सारभूत मधु का वहन करने वाला **(जीराश्वः)** वेगवान इन्द्रियाश्वों वाला **(अश्विनो रथः)** यह प्राणापान का शरीररूपी रथ **(अवार्ङ्यातु)** अन्तर्मुख यात्रा वाला हो। यह रथ **(सुष्टुतः)** उत्तम स्तुतिवाला हो। हम प्रभु का स्तुति-गान करें। **(त्रिबन्धुरः)** यह तम, रज और सत् इन तीन बन्धनों वाला है। **(मघवा)** प्रत्येक कोश के ऐश्वर्य से सम्पन्न हो। **(विश्वसौभगः)** सम्पूर्ण सौभाग्यवाला हो...इसके समस्त अंग-प्रत्यंग सौन्दर्यवाले हों। हम **(द्विपदे)** सब मनुष्यों के लिए तथा **(चतुष्पदे)** गवादि पशुओं के लिए **(शं आवक्षत्)** शान्ति प्राप्त कराने वाला हो। हमारा यह रथ अधिक से अधिक प्राणियों का हित करने वाला हो।

आ वां रथोऽवनिर्न प्रवत्वान्त्सृप्रवन्धुरः सुविताय गम्याः।
वृष्णः स्थातारा मनसो जवीयानहम्पूर्वो यजतो यः॥

(ऋ.1-181-3)

हे **(धिष्ण्या)** शरीर में उन्नत स्थान के योग्य **(स्थातारा)** शरीर के अधिष्ठातृरूप प्राणापानो! **(वाम्)** आपका **(यः)** जो **(रथः)** शरीररूप रथ है वह **(सुविता)** शोभन आचरण के लिए **(आगम्याः)** हमें प्राप्त हो। हम कदापि अपने शरीर से किसी भी प्रकार का अशोभनीय कार्य न करें। **(रथः)** यह रथ **(अवनिः न)** इस पृथिवी के समान **(प्रवत्वान्)** उत्कर्ष वाला है, अर्थात् इसका महत्व उतना ही है, जितना पृथिवी का। यह रथ पृथिवी के समान प्रशस्त वेगादि गुणों वाला है... **(सुप्रवन्धुरः)** यह रथ बड़ी ही सुन्दर गति वाला है। हमारा यह शरीर सुन्दर हो, शोभनीय कर्मो वाला हो और सदा ही गतिमय बना रहे...यह शरीर रथ **(वृष्णः मनसः जवीयान्)** शक्तिशाली मन से भी अधिक वेगवान् है...खूब क्रियाशील है. .. **(अहं पूर्वः)** अहं का इसमें मुख्य स्थान है जिसे प्राण-साधना द्वारा जीतना है...यह शरीर रथ **(यजतः)** प्रभु के साथ संगीतकरण करने का साधन है...

शरीर की पृथिवी के साथ तुलना करने के अनेक कारण हैं। पृथिवी गतिशील है और प्राणीमात्र का आधार है। इसीलिए शरीर के सम्बन्ध में भी अन्यत्र कहा गया है–**शरीरमाद्यम् खलु धर्मसाधनम्।** संसार के समस्त क्रियाकलाप हम इस शरीर द्वारा ही कर सकते हैं। हमारा शरीर सदा ही गतिशील बना रहे और हम यह न भूलें कि इस रथ का लक्ष्य प्रभु के साथ संगीतकरण करना है। यह रथ **(त्रिधातुना)** वात, पित और कफ इन तीन धातुओं से समन्वित है और इनमें से किसी एक के कुपित होने से शरीर अस्वस्थ हो जाता है। हम अपने खान-पान और आसन, व्यायाम तथा आचार-व्यवहार और औषधी आदि सेवन से इन धातुओं को कुपित न होने दें। इसे **(त्रिबन्धुर)** तीन बन्धनों वाला कहा गया है। तम रज और सत् ही इसके तीन बन्धन हैं। गीता में कहा गया है–**सत्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः॥ निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्॥** (गीता 14:5) प्रकृति से उत्पन्न होने वाले सत्व, रज, तम–ये गुण इस अव्यय देही को, आत्मा को, क्षेत्रज्ञ को देह में, शरीर में, क्षेत्र में बान्ध लेते हैं। आगे कहा गया। (गीता 14-6,7,8) कि सत्वगुण निर्मल होने के कारण प्रकाशक और अरोग्यकर है। यह आनन्द और ज्ञान के प्रति आसक्ति के कारण मनुष्य को बान्धता है। रजोगुण रागात्मक है, यह तृष्णा के प्रति आसक्ति होने के कारण उत्पन्न होता है इसलिए यह कर्म के प्रति आसक्ति में बान्ध देता है। तमोगुण अज्ञानमूलक होने के कारण व्यक्ति को भ्रम में डालकर

लापरवाही, आलस्य और निद्रा के पाश में बान्ध देता है। योगदर्शन में कहा है कि इन गुणों के आपसी विरोध अर्थात् प्रधान्य व अप्रधान्य से व्यक्ति दु:खी होता रहता है...उपासनादि द्वारा इस स्थिति से ऊपर उठना ही श्रेयस्कर है...

हम जरा इस रथ के सौन्दर्य को भी देखते व आंकते चलें। यह इन्द्रियों, मन और बुद्धि इन तीन चक्रों से सुसज्जित है। इसके अधिष्ठातृरूप प्राणापान हैं...जो इसके आधार हैं...प्राण चले जाएं तो सब-कुछ समाप्त हो जाता है...प्राणायामादि द्वारा इसे परिपक्वता प्रदान करते रहना चाहिए...इसे मन से भी अधिक वेगवान् कहा है क्योंकि यही हमारे समस्त क्रिया-कलाप का आधार है...हम इसे सदा ही क्रियाशील व गतिशील बनाए रखें...और अपनी घर वापसी अर्थात् ब्रह्मलोक को जाने की बात को सदा ही समरण रखते हुए अन्तर्मुखी होकर अन्तर-यात्रा करें। इसके लिए **(मघवा)** हमारा प्रत्येक कोश ऐश्वर्य से सम्पन्न हो। हम अपने अन्नमयकोश अर्थात् शरीर को खानपानादि से, प्राणमय कोश को प्राणायामादि से, मनोमयकोश को मनन एवं धारणादि परिपक्व करके, विज्ञानमयकोश को अन्तरमुखी होकर आनन्दमय कोश की सिद्धि को प्राप्त करें...इसके लिए वेद में एक और बात कही गई **(अहं पूर्वः)** अहं का इसमें जो मुख्य स्थान है उसे अहं अर्थात् अहंकार से हटाकर 'अहमस्मि मैं हूँ' इस आत्मसाक्षात्कार तक मुमुक्षुत्व-भाव और ईश्वर प्रणिधानादि के द्वारा पहुँचाने का प्रयास करना चाहिए।

अश्वों को ढंग से जोड़ो

–महात्मा चैतन्यमुनि

वेद कहता है...**पृश्निर्भवतु देवगोपा** (ऋ. 7-35-13) हमारे लिए वह अजन्मा, एकरस, अहिंसक, बोध करने योग्य परमात्मा शान्तिदायक हो। सूर्य-मेघ, समुद्र, आकाश एवं जलादि भी सभी शान्तिदायक हों। प्रसंगानुसार पृश्नि के विद्वानो ने बहुत से अर्थ किए है। कहीं-कहीं पृश्नि को वेद-विद्या तथा स्पर्श करने वाली आत्मा भी कहा, जिनका सही-सही प्रयोग करने वाला व्यक्ति सुख-शान्ति आदि को भली प्रकार प्राप्त करता है। सत्व, रज और तम के रंगों वाली यह प्रकृति भी पृश्नि है, इसे अदिति और गौ भी कहा है। हम आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिए ही इसका उपयोग करें। प्रकृति आत्म-ज्ञान प्राप्त करने लिए एक उत्तम साधन है अत: इसे साध्य मानने

की कभी भूल न करें। आज वास्तव में दु:ख, कष्ट और क्लेश एवं अशान्ति का कारण मुख्यत: यही है कि हम प्रकृति के गुलाम बन गए हैं। हम साधन को ही साध्य मानने की भूल कररहे हैं। निश्चित् रूप से यदि हमें प्रकृति का सही ढंग से उपयोग लेना आ जाए तो हम अपने जीवन के लक्ष्य को भली प्रकार प्राप्त करके सुख-शान्ति और आनन्द प्राप्त कर सकते हैं...अन्यथा यदि इसका दुरूपयोग करेंगे तो इसके विपरीत ही परिणाम होंगे। यदि हम परमात्मा की व्यवस्था को तोड़ेंगे तो उसका कठोर दंड भी हमें भोगना ही होगा। वेद कहता है–

सत्यमहं गभीरः काव्येन सत्यं जातेनास्मि जातवेदाः।
न मे दासो नार्यो महित्वा व्रतं मीमाय यदहं धरिष्यते॥

–(अथर्व. 5-11-3)

उस गंभीर, व्रतशील तथा जातवेद के नियमों को कोई तोड़ नहीं सकता चाहे वह दास हो या आर्य...और यदि नियमों को तोड़ेंगे तो उसका कुफल भी परमात्मा की न्याय-व्यवस्था में भोगना पड़ेगा। परमात्मा ने हमें यात्रा सिद्ध करने के लिए जो अश्व दिए हैं उन्हें सही दिशा में चलाने की आवश्यकता है। आत्मा को यही आदेश प्रभु ने दिया है–**युङ्क्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः। आरं वहन्त्याशवः॥** (सा.25) हे आत्मा! **(ये)** जो **(तव)** तेरे **(साधवः)** यात्रा को सिद्ध करने वाले **(अश्वासः)** घोड़े हैं, उन्हें ही **(युङ्क्ष्व)** अपने रथ में जोड़ो, जो कि **(आशवः)** मार्ग को शीघ्र व्यापक करने वाले **(अरम्)** सुन्दरता से **(वहन्ति)** रथ का खूब वहन करने वाले हैं।

वृ०उप० (अ०1ब्रा०1) में एक विलक्षण पशु का वर्णन है जिसे स्वर्गगामी अश्व कहा है। यह अश्व पृश्नि ही है जिसके सम्बन्ध में उपनिषद् में कहा है कि इस घोड़े का सिर उषा है, चक्षु सूर्य, प्राणवायु, मुख अग्नि, आत्मा संवस्तर, पीठ द्यौलोक, पेट अन्तरिक्ष **(अन्तरिक्ष उतोदरम्)** पसलियां दिशाएं, दिन-रात पैर और हड्डियां नक्षत्र-तारे आदि हैं...इस अश्व को स्वर्गगामी अर्थात् सुख तक ले जाने वाला कहा गया है मगर आज अधिकतम लोगों को इसका दुरूपयोग करते हुए ही देखा जाता है। जिससे यह स्वर्ग तक ले जाना नहीं बल्कि नरक तक ले जाने वाला बन गया है। देव, मनुष्य, गन्धर्व और असुर सभी इसी घोड़े पर सवार हैं मगर देवों

का लक्ष्य-स्वर्ग प्राप्ति एवं मोक्षादि की प्राप्ति है, मनुष्य का लक्ष्य केवल आनन्द-मोद मनाना है, गन्धर्व का लक्ष्य केवल भोगों को भोगना मात्र है। उन भोगों को भोगते-भोगते काम, क्रोधादि झाड़ियों में उलझकर रह जाना है। असुरों का लक्ष्य अपने स्वार्थ के लिए मार-काट आदि करना और अन्ततः स्वयं भी अनेक प्रकार के कष्टों और मुसीबतों में फंस जाना है। उपनिषद् की इस बात को हम एक दृष्टान्त से भली प्रकार समझ सकते हैं। किसी एकान्त स्थान पर एक ही पेड़ के नीचे जाने पर साधक, कवि, जुआरी, शराबी, व्यापारी और विलासी की अलग-अलग भावनाएँ बन जाती है। साधक सोचेगा कि देखो उपासना के लिए कितना अच्छ स्थान है, कवि सोचेगा कि किसी उत्तम काव्य की रचना करने के लिए यह स्थान उपयुक्त है। जुआरी सोचेगा कि जुआ खेलने के लिए यह बहुत ही उपयुक्त स्थान है। शराबी को यह स्थान शराब पीने के लिए अच्छा लगेगा, व्यापारी पेड़ की लकड़ी बेचने से उसे कितना लाभ हो सकेगा इस बात पर चिन्तन करेगा और विलासी के लिए वह स्थान अपने विलास के लिए अच्छा लगेगा...। एकान्त स्थान और पेड़ तो समान ही है मगर भावनाएँ सबकी अलग-अलग हैं। ठीक इसी प्रकार उपनिषद् कहता है कि देवों के लिए यह अश्व 'हय' बन जाता है। अर्थात् देव यहाँ आकर योगानुष्ठान् एवं साधना-उपासना और निष्काम कर्म करता हुआ अपने जीवन को सफलता प्रदान करता है। मनुष्यों के लिए यह घोड़ा 'अश्व' है। मनुष्य मानव जीवन पाकर यहाँ पर यज्ञ, दान, परोपकारादि पुण्य कर्मो को करके जीवन को सार्थकता प्रदान करते हैं। गन्धर्वो के लिए यह 'वाजी' है। अर्थात् वे इसमें भोग-विलासादि की पूर्ति करने की ही यात्रा करते हैं। असुरों के लिए यही पृश्नि 'अर्वा' बन जाता है अर्थात् वे हिंसक होकर अपने स्वार्थ के लिए मार-काट आदि करके इस जीवन को अपने लिए तथा औरों के लिए भी और अधिक कष्टप्रद बना लेते हैं...वेद में संसाररूपी नदी को अनेक पत्थरों (रूकावटों, पापरूपी बोझों) वाली बताया गया है और साथ ही इससे पार उतरने के लिए बहुत ही सुन्दर युक्तियाँ भी दी गई है-

अश्मन्वती रीयते सꣳरभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः।
अत्रा जहीमो अशिवा ये असन् शिवान् वयमुत्तरेमाभिवाजान्॥

-(ऋ० 10-53-8, अ० 12-2-26)

मन्त्र कहता है कि इसे पार करने के लिए **(संरभध्वम्)** एक-दूसरे के

साथ मिलकर चलो। वेद में अन्यत्र भी कहा गया है कि मिलकर चलो.. .आपस में एक-दूसरे से ऐसे प्रेम करो जैसे गाय अपने नवजात बछड़े को करती है...मन्त्र में दूसरी बात कही गई है कि **(वीरयध्वम्)** तुम वीरतापूर्वक और धैर्यपूर्वक कार्य करो। संसार में आत्मविश्वास से बढ़कर और कोई बल नहीं है। आगे बहुत ही महत्वपूर्ण बात कही कि **(दुरेवाः असन् अत्रा जहीत)** दुराचरण को यहीं पर छोड़ जाओ अर्थात् सदा ही सदाचरण का अनुसरण करो। यह ध्रुव सत्य है कि अन्ततः दुराचारी नाश व पतन को ही प्राप्त होता है और सदाचारी उत्थान को...। आगे कहा कि **(अनमीवाम् वाजान् अभि)** अपनी आत्मिक शक्तियों को साथ लेकर चलो। आत्मा की शक्तियाँ सदा ही सत्यमय होती हैं...और सत्य की सदा विजय ही होती है। आत्मा के जो स्वाभाविक गुण हैं उनका कभी भी त्याग नहीं करना चाहिए। इसीलिए मन्त्र कहता है कि भद्रताओं को, धर्म को, सत्य को, यज्ञादि को, और परोपकार आदि को अपने जीवन का अंग बनाकर चलो।

परमात्मा ने हमें जो भी प्राकृतिक साधन दिए है, कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ और अन्तःकरण दिया है उसका हमें सही-सही प्रयोग करना आना चाहिए। इतना भर करने से ही हमारे जीवन को सार्थकता प्राप्त हो सकती है। यह प्रकृति, वाह्यकरण और अन्तःकरण ही वे घोड़े हैं जिन्हें कुशलता के साथ, ठीक प्रकार से जोड़कर हम अपनी यात्रा को सही ढंग से पूरी कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में कठोपनिषद् का ऋषि कहता है कि-

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥

-(कठो०-3-3,4)

इस आत्मा को रथी, शरीर को रथ, बुद्धि को सारथि और मन को रस्सी समझना चाहिए। ये इन्द्रियाँ घोड़े हैं, इन्द्रियों के विषय मार्ग हैं जिन पर घोड़े दौड़ते हैं। मनीषी लोग कहते है कि जब आत्मा, इन्द्रियाँ तथा मन मिलकर कोई काम करते हैं तब मनुष्य भोक्ता कहलाता है। क्योंकि आत्मा प्रमुख है अतः उसी के द्वारा साधिकार इन समस्त उपकरणों का प्रयोग होगा तभी लक्ष्य की प्राप्ति होगी।...

-महर्षि दयानन्द धाम, महादेव, सुन्दरनगर-174401 (हि.प्र.)

आगामी प्रकाशन

गऊ माता विश्व की प्राणदाता

इस पुस्तक को क्यों पढ़ें?

लेखक : मेहता जैमिनिजी

इस पुस्तक के लेखक अपनी विद्वत्ता व खोज के लिए विश्व प्रसिद्ध थे। संसार के सब महाद्वीपों में जहाँ-जहाँ गये वहाँ गऊ की महिमा पर व्याख्यान दिये और गऊ के बारे में गहन अनुसंधान भी करते रहे।

इस पुस्तक के विद्वान लेखक ने धर्म, दर्शन, विज्ञान, अर्थशास्त्र, स्वास्थ्य, चिकित्सा शास्त्र व कृषि विज्ञान आदि सब दृष्टियों से गो-पालन की उपयोगिता पर पठनीय प्रकाश डाला है।

लेखक कई भाषाओं के ऊँचे विद्वान थे। इस पुस्तक में पूर्व और पश्चिम के अनेक विद्वानों व पत्र पत्रिकाओं को उद्धृत करके अपने विषय व पाठकों से पूरा न्याय किया है। पुस्तक में मौलिकता है, रोचकता है। पुस्तक विचारोत्तेजक है और प्रेरणप्रद शैली में लिखी गई है।

पुस्तक के अनुवादक व सम्पादक ने अपने सम्पादकीय में पाठकों को बहुत ठोस व खोजपूर्ण जानकारी दी है। यह पुस्तक सत्तर वर्ष पूर्व लिखी गई थी। पुराने आकड़ें अप्रासंगिक हो गए थे सो तीन नये परिशिष्ठ देकर पाठकों को गो-विषयक नवीनतम अनुसंधान से लाभान्वित किया गया है।

पुस्तक गागर में सागर है। गो-पालकों व विचारकों के करोड़ों वर्षों के अनुभवों का इसमें निचोड़ मिलेगा।

हम कैसे बचे?

लेखक : प्रो. रामविचार

'हम कैसे बचे'? पुस्तक का अभिप्राय यह है कि वे कौन-से कारण थे जिनके आधार पर वैदिक धर्म, वैदिक संस्कृति, वैदिक सभ्यता और आर्य हिन्दू जाति दासता-काल (सन् 712 से 1947 तक) में इस्लाम और ईसाइयत के दुष्प्रभाव से बच पाये। इस पुस्तक में उन्हीं कारणों का विवेचन किया गया है।

आर्य-हिन्दू जाति के प्रेमी इसको पढ़ कर लाभ उठाएँगे। यह पुस्तक प्रचारकों और स्वाध्यायशील व्यक्तियों के लिए लाभदायक सिद्ध होगी, ऐसी आशा है।

ikfIr LFkku% fot ; d|ekj xkfoUnjke gk l kuUn

4408] ub lMd] fnYyh&6] nqjHkk"k 23977216] 65360255

Email: ajayarya16@gmail.com Web: www.vedicbooks.com

WHAT IS VEDA?

Sanatana Foundation of Universal Dhrama

by Dr. Tulsi Ram Sharma
Gianender Kumar Sharma **Rs. 250.00**

Veda is the Sanatan foundation of Universal Dharma, original, ancient, Sanatan yet modern, living in creative response to the changing circumstances.

Sanatan Dharma till today has passed through many historical stages: the original Vedic in what is called the Vedic age, then ritualistic, pure as well as distorted, theistic, even non-theistic, ethical, moral, symbolic, mythological, with even a variety of 'Gods' divine and human, until the time of Swami Dayananda and after.

Beyond this historical variety of Dharma, as Swami Dayananda asserted, this book concentrates on the original vedic Dharmik message of Jnana (Knowledge), *Karma* (active Living), and Upasana (Praise, Prayer and Meditation). It covers the knowledge and modern relevance of creative evolution of the world, material, biological, spiritual and socio-political.

It covers the Vedic knowledge of Shruti, Smriti, Sadachara and freedom of Conscience, and many other themes such as age of the Vedas, Devata, science, society, karma and the karmic cycle, punarjanma with reference to reincarnation in other traditions.

Written on the model of Swami Dayanand's *Rgvedadi Bhashya Bhumika,* this book takes into account the change of circumstance, while dealing with Vedic themes in relation to present time. In this I.T. age of science, democracy and globalism, you will feel surprised by the modernity of the ancient and the timeless.

ikfIr LFkku% fo t ; d|ekj xkfoUnjke gkIkuUn
4408] ubl lM+d] fnYyh&6] n|jHkk"k 23977216] 65360255
Email: ajayarya16@gmail.com Web: www.vedicbooks.com